फूड प्रोसेसिंग सिस्टम में सुधार की जरूरत

मुद्दा

भारत डोगरा

ताजा विवाद ने एक बार फिर फूड प्रोसेसिंग उद्योग में पोषण व स्वास्थ्य पक्षों की उपेक्षा की ओर ध्यान दिलाया है। इस विषय में तथ्यों व परीक्षणों के आधार पर सरकार को निष्पक्ष कार्यवाही करते हुए स्वास्थ्य रक्षा के उद्देश्यों को सबसे ऊपर रखना चाहिए। पर बात यहीं नहीं रुकनी चाहिए। फूड प्रोसेसिंग (खाद्य प्रसंस्करण) में अधिकाधिक सुधार भी होना चाहिए क्योंकि लंबे अरसे से हमारे खाद्य प्रसंस्करण में ऐसे तौर-तरीके अपनाए जा रहे हैं जिससे रोजमर्रा के उपयोग के खाद्य पदार्थ जैसे आटा, चावल, तेल आदि के पोषण तत्वों का ह्रास होता है। लेकिन इस विसंगति को दूर करने के बजाए ऐसे अनेक नए-नए खाद्य पदार्थों के उत्पादन को बढ़ावा दिया जा रहा है जिनमें पोषण की सोच को ताक पर रख केवल स्वाद, पैकिंग, रंग आदि के नाम पर लुभाया जा रहा है। इन खाद्यों में पोषण की बात की भी जाती है तो आधे-अधूरे रूप में।

देश में चावल निश्चय ही सबसे महत्वपूर्ण खाद्य है और दुर्भाग्य से चावल के प्रसंस्करण में ही पॉलिशिंग द्वारा पोषण तत्वों का सबसे अधिक ह्रास हो रहा है। एल. रामचंद्रन ने अपनी पुस्तक 'खाद्य नियोजन कुछ महत्वपूर्ण पक्ष' में लिखा है कि केवल मात्रात्मक स्तर पर देखें तो साधारण पोषण व पॉलिशिंग में मात्रात्मक हानि 8 से 16 प्रतिशत होती है, व अत्यधिक पॉलिशिंग की जाए तो यह हानि 27 प्रतिशत तक पंहुच जाती है। इसी प्रकार आधुनिक मिलों में गेंहू के प्रसंस्करण में, जहां उसके बाहरी हिस्से को आटा पीसते समय अलग कर दिया जाता है, उससे अनाज का बहुत अपव्यय होता है। रामचंद्रन के अनुसार अनाजों के इस अपव्ययपूर्ण प्रसंस्करण से प्रतिवर्ष मात्रात्मक स्तर पर मनुष्यों के खाने योग्य करीब 80 लाख टन अनाज का नुकसान होता है पर गुणात्मक स्तर पर जो नुकसान होता है वह और भी चिंतनीय है। अनाज के जो हिस्से छीले-फेंके जाते हैं उनमें वही पोषक मौजूद होते हैं जिनकी कमी औसत भारतीय के भोजन में विशेष तौर पर पाई जाती है। भारत जैसे निर्धन देश के लिए पोषक तत्वों का यह अपव्यय निश्चत ही चिन्तनीय है। रामचंद्रन के अनुसार भारतीयों का औसत भोजन मुख्यतः अनाज पर ही आश्रित होता है। ऐसे में प्रोसेसिंग के गलत तरीकों से जो पोषण तत्व नष्ट हो जाते हैं उनकी पूर्ति अन्य तरह के भोजन से नहीं हो सकती है जैसा विकसित देशों में संभव है। इसी कारण देश के अधिसंख्य निर्धन लोगों को अधिक नुकसान उठाना पड़ता है।

पोषक तत्वों की हानि का अन्य बहुत बड़ा स्रोत खाद्य तेलों का हाइड्रोजनीकरण अथवा तथाकथित वनस्पति घी का उत्पादन है। पहले तेल को रासायनिक संसाधन द्वारा गंधमुक्त व रंगहीन किया जाता है। फिर एक निकल उत्प्रेरक (कैटालिस्ट) का उपयोग करते हुए इसका हाइड्रोजनीकरण किया जाता है। इस प्रक्रिया में असंतृप्त वसा व पॉली-असंतृप्त वसा संतृप्त वसा में तब्दील हो जाते हैं। अधिक मात्रा में लेने पर संतृप्त वसा स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकती है। यह स्थिति एक ओर हमें आवश्यक पोषण से वंचित रखती है तो दूसरी ओर दीर्घकालीन स्तर पर ऐसे तत्वों का बोझ डालती है जो गैर-जरूरी व नुकसानदायक है।

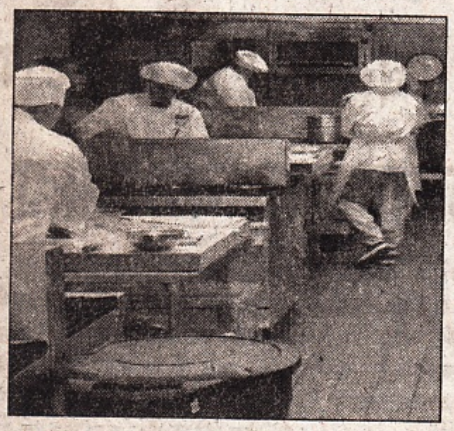

इसके अलावा भारतीय भोजन में केवल अभिजात वर्ग में ही नहीं अपितु बहुत हद तक मध्यम व कुछ हद तक निम्न वर्ग में भी, गैरजरूरी नए-नए खाद्य पदार्थ जुड़ते जा रहे हैं जिनमें स्वाद व दिखावा ज्यादा है और पोषण कम। खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के इन नए उत्पादों का चलन पहले समृद्ध परिवारों में ही होता है, पर विज्ञापनों के जोर पर इसे सुखद जीवन शैली से इस कदर जोड़ दिया जाता है कि देखा-देखी कम आय के लोग भी अपनाने का प्रयास करते हैं, चाहे इसके लिए उन्हें अपने जरूरी खर्चों में कटौती क्यों न करनी पड़े। अपेक्षाकृत अधिक कीमत पर कम पोषक तत्व देना या ना के बराबर देना इन खाद्य पदार्थों की विशेषता है। इन्हें अधिक खाने से विशेषकर बच्चों में अनेक स्वास्थ्य समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। इनमें तरह-तरह के बेकरी उत्पाद, चॉकलेट, चिप्स, नमकीन, शीतल पेय, 'एनर्जी ड्रिंक' और अनेक बेबी फूड शामिल हैं।

पोषण विशेषज्ञ थंकम्मा जैकब ने लिखा है कि बढ़ती तादाद में लोग इस 'आत्मघाती भोजन पद्धति' को अपनाते जा रहे हैं। बच्चे प्राकृतिक खाद्यों से हटकर अधिक परिष्कृत व लुभावने रंग-स्वाद के खाद्यों की ओर सबसे अधिक झुक रहे हैं। पश्चिमी देशों में हुए अध्ययनों ने इस मत की पुष्टि कर दी है। थंकम्मा लिखती हैं कि पश्चिम का खानपान पूरी तरह या कुछ हद तक दीर्घकालिक बीमारियों व स्वास्थ्य समस्याओं के लिए जिम्मेदार है जैसे मोटापा, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, जोड़ों का दर्द, बवासीर, मधुमेह, कब्ज, कैंसर व एलर्जी। ये खाद्य पदार्थ निम्न आय के परिवारों में भी लोकप्रिय हो रहे हैं। पोषण विशेषज्ञ एलन बैरी ने कुछ वर्ष भारत में काम करने के बाद लिखा कि विज्ञापनों द्वारा निम्न आय के लोगों में भी इन खाद्य पदार्थों के काल्पनिक गुणों की बात बैठा जाती है, विशेषकर बच्चों को इनसे मिलने वाले लाभ के बारे में। परंतु वास्तव में अधिक खर्च के बावजूद कम पोषण मिलता है। अतः नए खाद्य पदार्थों पर खर्च करने के कारण लोगों की पोषण स्थिति पहले से ज्यादा बिगड़ रही है क्योंकि आवश्यक पोषक पदार्थों (दाल-रोटी सब्जी) के लिए कम पैसे बचते हैं। ब्राजील में एक अध्ययन में डा. एनी डायस ने देखा कि बच्चों में बहुत कुपोषण है परंतु कोकाकोला, पेप्सी, फैंटा पर वे इस हालत में भी खर्च करते हैं। ब्राजील में बिकने वाले फैंटा आरेंज में संतरे का रस बिल्कुल नहीं होता पर यह बहुत बिकता है। ब्राजील में विटामिन सी की कमी के कारण कुपोषण है पर यहां के संतरे अमेरिका आदि विकसित देशों को भेज दिए जाते हैं। भारत में भी इस तर्ज पर परियोजनाएं बन रहीं हैं कि पेप्सी कोला पियो व फल बाहर भेजो।

कुल मिलाकर इस समय एक सशक्त उपभोक्ता आंदोलन या स्वास्थ्यवर्धक भोजन आंदोलन की आवश्यकता है जो जनसाधारण को वर्तमान खाद्य उद्योग की संरचना व इसके तौर-तरीके के कारण हो रहे पोषण की क्षति व विभिन्न स्वास्थ्य समस्याओं के विषय में शिक्षित कर सके। जन-शिक्षण अभियान के आधार पर ही सरकार पर दबाव डाला जा सकता है। पर निहित स्वार्थों की शक्ति व सरकारी 'लालफीताशाही' देखते हुए यह भी आवश्यक हो जाता है कि इस आंदोलन से जुड़े लोगों व संस्थाओं द्वारा छोटे-छोटे विकेन्द्रित प्रयास इस तरह किए जाएं कि अपेक्षाकृत छोटे स्तर पर ही सही, बिना पालिश किया चावल, आटा ब्रेड व बिस्कुट, साफ सुथरा गुड़, स्वास्थ्यवर्धक शीतल पेय लोगों तक पहुंचने लगे ताकि लोगों को यह भी लगे कि आज के कई तरह से अपव्ययी व हानिकारक खाद्य उद्योग व उसके निहित स्वार्थों से अलग भी खाद्य उद्योग का एक रास्ता हो सकता है जो पोषण व स्वास्थ्य की आवश्यकताओं के प्रति जिम्मेदार है।

अर्थव्यवस्था में ठहराव

आर्थिक विकास के ढांचे को रोजगारोन्मुख बनाने की जरूरत पर जोर दे रहे हैं

▲

राजीव कुमार

आर्थिक विकास पर एक तकनीकी और संकीर्ण दृष्टि वास्तविक चुनौतियों से बहकाने वाली और ध्यान बंटाने वाली हो सकती है। उदाहरण के लिए, पिछले वित्त वर्ष की अंतिम तिहाई जनवरी से मार्च, 2015 के दौरान जीडीपी विकास में वृद्धि के लिए सरकारी स्पष्टीकरण दिया जा रहा है कि आयात की तुलना में निर्यात ज्यादा तेजी से गिरा है, कुल निर्यात सकारात्मक है और इसने जीडीपी विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है! इसलिए जब तक कुल निर्यात सकारात्मक है, निर्यात और आयात- दोनों विकास में मदद करते हैं। हम जैसे अर्थशास्त्रियों ने तो बिना आंखें झपकाए ही इस रहस्यमयी बयान को स्वीकार कर लिया है, लेकिन विकास पर इस तरह का तकनीकी फोकस निस्संदेह तथ्य से पूरी तरह ध्यान बंटाता है कि निर्यात और आयात में गिरावट जरूर ही विकास में गिरावट का संकेत है या रोजगार के स्तरों में कम से कम गतिहीनता तो है ही। और हर माह कम से कम 10 लाख रोजगार सृजन करने की बड़ी चुनौती झेल रहे देश के लिए निश्चित ही महज आर्थिक विकास से ज्यादा बड़ी चुनौती और लक्ष्य रोजगार होना चाहिए।

आज ऐसे सांख्यिकी संस्थान द्वारा पेश किए जाने वाले आंकड़े के जरिये लोगों और नीतिकारों का ध्यान खींचा जा रहा है जो आंकड़ों में बार-बार सुधार करते हैं। इन आंकड़ों में आंतरिक असंगति रहती है, लेकिन उससे ज्यादा महत्वपूर्ण और साधारण-सा सवाल यह पूछा जाना चाहिए कि चाहे किसी भी दर पर हो, यह विकास रोजगार सृजन को प्रभावित करता है या नहीं। मुझे यह बात परेशान कर रही है कि जीडीपी के आंकड़ों पर चल रही बहस में यह सवाल ही खो गया है। अपने नीति निर्माताओं के सार्वजनिक बयानों को देखें तो दुर्भाग्यवश रोजगार की बात उनकी प्राथमिकता में नहीं लगती। अपनी युवा आबादी को लेकर दुनिया में सिर ऊंचा किए देश में रोजगार पर इस तरह कम ध्यान देने की बात एकदम समझ से बाहर है।

ईमानदारी से कहें तो जीडीपी विकास के नवीनतम आंकड़ों पर बहस इस भ्रम को दूर करने में सफल नहीं हो रही कि अर्थव्यवस्था सही हालत में आ गई है या नहीं। 2014-15 में पहले छह महीने की तुलना में दूसरी छमाही में विकास की गति साफ तौर पर कमजोर होने को शामिल कर दें तो यह बात समुचित रूप से कही जा सकती है कि कुल मिलाकर आर्थिक कमजोरी जारी है और इसीलिए रिजर्व बैंक द्वारा 2 जून को जारी दूसरे दोमाही नीतिगत बयान में 2015-16 के लिए विकास दर को 7.8 से घटाकर 7.6 प्रतिशत करना पड़ा। इस तरह राजकोषीय विस्तार और मौद्रिक सुविधा की संयुक्त खुराक देकर अर्थव्यवस्था को सशक्त उत्साह की जरूरत है। यह बात अच्छी है कि सिर्फ अप्रैल, 2015 महीने में कुल वार्षिक व्यय का 9.1 प्रतिशत तक खर्च किया गया है। यह सामूहिक तौर पर शासन में बेहतरी को प्रदर्शित करता है, लेकिन यह भूतल परिवहन जैसे मंत्रालयों में खास तौर से हुआ है जिसने अप्रैल में खर्च के प्रमुख हिस्से का उपयोग किया है। रिजर्व बैंक ने 2 जून को रेपो रेट में 25 आधार अंक कम करने की घोषणा कर और मौद्रिक सुविधा देते हुए सहायता की है। खपत और निवेश- दोनों आंकड़ों के कुछ विवरण देखने पर निरंतर प्रोत्साहन की जरूरत प्रत्यक्ष रूप से लगती है। खपत के आंकड़े खास तौर से ग्रामीण मांग में लगातार कमजोर बने हुए हैं। यहां भी सीएसओ द्वारा पेश किए गए आंकड़े वैकल्पिक स्रोतों से आने वाले आंकड़ों से भिन्न लगते हैं। आम तौर पर निजी अंतिम उपभोक्ता व्यय (पीएफसीई) कॉरपोरेट आय और बिक्री में विकास से बिल्कुल मिलते-जुलते हैं। यह आश्चर्यजनक नहीं है, क्योंकि दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यह सह-संबंध पिछले वित्तीय वर्ष के दौरान दिलचस्प तरीके से अलग-अलग हो गया है। सीएसओ के आंकड़ों के अनुसार पीएफसीई में बढ़ोतरी हो रही है जबकि इसके उलट कॉरपोरेट बिक्री में गिरावट आई है। यह समझ में न आने वाली बात है। आयात ने मांग-आपूर्ति के अंतर को नहीं भरा है, क्योंकि इसमें काफी गिरावट आई है।

आयात की स्थिति उतनी ही कमजोर है जितनी खपत की हालत। हालांकि सीएमआइई के आंकड़े बताते हैं कि नई परियोजनाओं की घोषणाओं की संख्या बढ़ रही है और परित्यक्त परियोजनाओं की संख्या कम हो रही है। कई निवेशकों की तरफ से जानकारी है कि किसी भी सेक्टर में कोई नई क्षमता वस्तुतः बढ़ाई नहीं जा रही है। कुछ क्षेत्रों में क्षमता उपयोग और कार्यान्वित की जा रही परियोजनाओं पर उछाल आना बस शुरू ही हो रहा है। व्यावसायिक बैंकों से कॉरपोरेट द्वारा ऋण लेने के विकास की दर गिरावट की ओर है और अप्रैल, 2015 में यह 4 प्रतिशत से भी नीचे गिर गई है। साफ तौर पर सभी महत्वपूर्ण निवेश चक्र सही हालत में आ जाने वाले चरण में अब तक नहीं हैं। निवेश चक्र को बदलने के लिए सरकार को जटिलताओं को दूर करना होगा और सार्वजनिक पूंजी व्यय का विस्तार जारी रखना होगा। इसलिए अर्थव्यवस्था अभी मिश्रित चित्र उपस्थित कर रही है। कॉरपोरेट निराशा सरकारी तंत्र की अधिकता की वजह से बढ़ती है और हमें स्वीकार करना चाहिए कि कई दफा यह बेकार कारणों से होती है। रीयल इस्टेट सेक्टर जोश रहित मांग और मंदी की प्रवृत्ति से जूझ रहा है। निर्यात में लगातार चार महीने से गिरावट है। इसलिए कहा जा सकता है कि सही हालत में आने के लिए सहायता जरूरी है और इसमें किसी तरह की जटिलता नहीं होनी चाहिए। आम आदमी आंकड़ों के खेल से स्तब्ध है। उसकी रोजगार के अवसरों में ज्यादा रुचि है जो दुर्भाग्यवश अब तक सकारात्मक नहीं है। खराब बात यह है कि शहरों में वास्तविक मजदूरी उसी तरह है जबकि ग्रामीण इलाकों में यह घट रही है। आम आदमी-मोदी के नव मध्य वर्ग के लिए बढ़ते रोजगार अवसर ही बेहतर जीवन और बढ़िया कल्याण की पक्की गारंटी हैं। यथासंभव तेजी से रोजगार बढ़ाना निश्चित तौर पर इस सरकार की सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए।

इस बारे में यह विडंबना है कि जनसांख्यिकी भिन्नता वाले इस देश में रोजगार पर विश्वसनीय सरकारी आंकड़ा अब भी एनएसएसओ द्वारा पेश किया जाता है जो हर दो और पांच साल में एक बार क्रमशः 'छोटे' और 'बड़े' राउंड वाले आंकड़े जारी करता है। लेबर ब्यूरो द्वारा पेश किया जाना वाला वार्षिक श्रम आंकड़ा हर दृष्टि से बेकार है। जैसा कि इंस्टीट्यूट ऑफ ह्यूमन डेवलपमेंट की श्रम और रोजगार रिपोर्ट में बताया गया है, बेरोजगारी की गुणवत्ता का जमीनी स्थिति से तालमेल नहीं है क्योंकि 'स्वरोजगार' का उपयोग बेरोजगार और योग्यता से कम रोजगार वालों के लिए अवशेष श्रेणी के तौर पर किया जाता है। यह वक्त है कि सरकार रोजगार सृजन पर तो ध्यान दे ही, बेरोजगारी के आंकड़े की गुणवत्ता बेहतर करने और इसे नियमित रूप से अपडेट करने पर भी ध्यान दे। इसके बिना नीति बनाना अंधेरे में तीर मारने के समान है।

(लेखक सेंटर फॉर पालिसी रिसर्च में सीनियर फेलो हैं)